ANNEXURE - 13

(क्री)

(106)

प्रज्ञान

PRAJÑĀNA

(A Peer Reviewed Journal)

Volume : 6-8 Issue : 3/2015-16 ISSN : 2278-1609

Km. Mayawati Government Girls Post Graduate College
Badalpur, Gautambudha Nagar (U.P.) - 203 207

Scanned by CamScanner

(106)

जैन नीतिशास्त्र में 'त्रिरत्न'

डॉ. नीलम शर्मा
असि. प्रो. संस्कृत विभाग
कु. मा. रा. म. स्ना. महाविद्यालय,
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

जैन दर्शन मूलतः एक जीवन पद्धति और नीतिशास्त्र ही है, वस्तुतः तर्कशास्त्र और तत्वमीमांसा उसके नीतिशास्त्र का समर्थन करने के लिये ही विकसित हुए हैं। अन्यान्य दर्शनों की भाँति जैन आचारदर्शन भी आत्मा के बन्धन और मुक्ति की अवधारणा में पूर्ण आस्था रखता है। स्वभावतः अनन्तचतुष्टय से युक्त आत्मा कर्मपुद्गलों से बन्धनग्रस्त हो जाता है और इन समस्त कर्मपुद्गलों से सम्बन्ध विच्छेद या उनके पूर्ण नाश के उपरान्त आत्मा के स्वस्वरूप में अवस्थान ही मुक्ति है। इस मुक्ति की प्राप्ति के लिए जैन दर्शन में त्रिविध साधन प्रतिपादित हैं। इनके अत्यधिक महत्त्व के कारण इन्हें 'त्रिरत्न' से अभिहित किया गया है। वस्तुतः जैन दर्शन का सम्पूर्ण आचारशास्त्र इन त्रिरत्नों पर ही आधारित है। ये त्रिरत्न हैं– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र। इन त्रिविध साधनामार्ग के विधान में जैन आचार्यों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि रही है। इस मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानवीय चेतना के तीन पक्ष हैं– ज्ञान, भाव और संकल्प। चेतना के भावनात्मक पक्ष के उचित नियोजन के लिए सम्यक् दर्शन, ज्ञानात्मक के लिए सम्यक् ज्ञान और संकल्प पक्ष के लिए सम्यक् चारित्र का विधान किया गया है। इन त्रिरत्नों के मनोवैज्ञानिक आधार और विशिष्ट स्वरूपपूर्वक वर्तमान में इनकी प्रासंगिकता का निरुपण ही प्रस्तुत शोधपत्र का लक्ष्य है।

अन्याय दर्शनों की भाँति जैन आचारदर्शन भी आत्मा के बन्धन और मुक्ति की अवधारणा में पूर्ण आस्था रखता है। अन्यान्य दर्शनों के समान जैन दर्शन में भी मुक्ति अथवा मोक्ष को मानव जीवन का सर्वोच्च और अंतिम लक्ष्य माना गया है। यद्यपि स्वभावतः जीव या आत्मा अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य इन अनन्त चतुष्टय से युक्त है, किन्तु जब वह कर्मपुद्गलों को ग्रहण कर लेता है तो बंधनग्रस्त हो जाता है।[1]– इस बन्धन के 5 कारण हैं[2]– (1.) मिथ्या दर्शन (सदसदविवेक या अश्रद्धा) (2.) अविरति (वैराग्याभाव अर्थात् रागादि) (3.) प्रमाद (कर्त्तव्याकर्त्तव्य में असावधान) (4.) कषाय (क्रोध, लोभ, मान और माया) (5.) योग (मानसिक, वाचिक व कायिक क्रिया)। इनके कारण कर्मपुद्गलों से संयुक्त हुए जीव में उसके वास्तविक लक्षण तिरोहित हो जाते हैं और वह सांसारिक दुःखों से त्रस्त होता हुआ जन्म मरण चक्र में फंस जाता है।

जैन दर्शन में जीव के बन्धन से मोक्ष प्राप्ति तक क्रमिक 5 सोपान माने गये हैं। ये हैं– (1.) आस्रव (2.) बन्ध (3.) संवर (4.) निर्जरा (5.) मोक्ष। ये सभी भाव और द्रव्य भेद से द्विविध हैं। इनमें भाव मानसिक क्रिया या संकल्प रूप है। यह आत्मनिष्ठ है, अर्थात् इससे केवल आन्तरिक भावों में परिवर्तन होता है। किन्तु जब वास्तविक रूप में बाह्य स्थिति में परिवर्तन हो जाता है तो उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य वस्तुनिष्ठ है। यद्यपि तार्किक दृष्टि से भाव, द्रव्य का कारण है, किन्तु सामयिक दृष्टि से दोनों एक ही साथ समानान्तर रूप से होते हैं।

यहाँ आस्रव का तात्पर्य कर्मपुद्गलों का जीव की ओर प्रवाह से है।[3]– जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के कारण होता है। अतः कर्मों के प्रवाह में निमित्तभूत इन पाँचों का समूह ही आस्रव कहलाता है। यह आस्रव ही बंधन का कारण है। यह बन्धन प्रकृति-स्थिति-अनुभाग और प्रदेश भेद से चतुर्विध है।[4]– इस प्रकार कर्मों का आत्मा से सम्बद्ध होना बन्धन है अतः इन कर्मों से सम्बन्धविच्छेद या इन समस्त कर्मपुद्गलों का नाश ही मोक्ष है। किन्तु इस मोक्षावस्था की प्राप्ति के लिये कर्मप्रवाह का रुकना और पूर्वसम्बद्ध कर्मों का आत्मा से वियोग अत्यन्त अपेक्षित है। यहाँ कर्म प्रवाह रूप आस्रव का रुकना ही संवर है।[5]– इनके कारण जीव में नवीन कर्मों का प्रवाह सर्वथा अवरुद्ध कर दिया जाता है। तथापि मुक्ति के लिये अनागत कर्मों का अवरोध ही पर्याप्त नहीं है अपितु जो कर्मपुद्गल जीव से संयुक्त हो, उसके वास्तविक स्वरूप के आवरक हैं, उनका नाश भी अत्यन्त आवश्यक है। इन पूर्वसंचित कर्मों के नाश की प्रक्रिया या